Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 10 ~ Issue 12 (2022) pp: 20-26
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

शंकर एवं माध्यमिक बौद्ध अवधारणा में सत्ः एक तुलनात्मक अनुशीलन

डा॰ नाजनी बेगम
एसोसिएट प्रोफेसर
दर्शनशास्त्र विभाग
मिर्जा गालिब कॉलेज, गया

***R**eceived 24 Nov., 2022; **R**evised 05 Dec., 2022; **A**ccepted 07 Dec., 2022 © The author(s) 2022.*
P**ublished with open access at **www.questjournals.org

कतिपय विचारकों की यह मान्यता है कि अद्वैत वेदान्त के अधिष्ठाता शंकर का तत्व चिनतन यथार्थ में माध्यमिक बौद्धों द्वारा स्थापित सत्य की ही पुनरावृत्ति मात्र है तथा बौद्धों के प्रति इनका तीव्र विरोध एक छलावा रुप प्रदर्शन के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसी मान्यता ने शंकर के लिए प्रच्छन्न बौद्ध के सम्बोधन-प्रयुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। लेकिन क्या यह सत्य है ? क्या शंकर-मत की अपनी कोई विलक्षणता नही ? इन्हीं प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में शंकर एवं माध्यमिक बौद्ध दर्शन में प्रतिपातिदत सत् की दृष्टि के सम्यक् अनुशलन के आधार पर एक निष्कर्ष पर आना प्रस्तुत निबंध का अभिष्ट है।

प्रथमतः प्रश्न है कि इस मान्यता की स्वीकृति का क्या कोई आधार है ? सम्यक् अनुशीलन निश्चयतः इसका भावात्मक उत्तर प्रस्तुत करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि शंकर बौद्धों के प्रति प्रबल विरोध का भाव प्रदर्शित करते पाए हैं , किन्तु तुलना की दृष्टि से देखा जाए तो इनकी स्थापनाओं की बौद्ध दार्शनिक प्रतिष्ठानों से मान्यता स्पष्ट रुप से दृष्टिगत होती है। उल्लेखनीय है कि तत्व का अधबोध करते हुए माध्यमिक बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन ने परमार्थ सत् के लक्षण की अभिव्यक्ति में स्पष्ट किया है कि-तत्व (परमाथ सत्) वह है जिसका अनुभव सीधे किया जाए , जो शांति हो, प्रपंचों से मुक्त हो, निर्विकल्प हो तथा जिसमें किसी प्रकार का भेद अथवा नानात्व न हो। शंकर का पारमार्थिक सत् व्रहा निश्चयतः माध्यमिक तत्व से बहुत भिन्न नहीं है, क्योंकि इसी से साम्य रखते हुए इन्होंने माना है कि व्रहा अभेद और नानात्मव से रहित शुद्ध सत् है। निर्विशेष यह शुद्ध सत् ज्ञानस्वरूप या स्वरूप ज्ञान है।

माध्यमिक दर्शन के सभी आचार्य इस बात पर भी जोर देते पाए जाते हैं कि परमार्थ सत् या तत्व बुद्धि या वाणी का विषय नहीं हो सकता। आचार्य आर्यदेव ने माना कि तत्व अद्वय एवं शान्त है , इसका साक्षात्कार केवल बौद्धों के द्वारा ही हो सकता है। इनके अनुसार तत्व प्रकृति से ही कल्पना के रोगों से अछूता विशुद्ध चैतन्य आदि शुद्ध अनुत्पन्न तथा अनाविक हैः

प्रकृत्या कल्पनारागे विभिवत् चितरन्तम्।
आदिशुद्धमनुत्पन्न निज रुपमनाविलम्।।

अज्ञान के कारण यह उसी प्रकार से बुद्धि जैसा प्रतीत होता है कि जैसे उज्जवल संगमरमर का पत्थर , इसके समीप समीप स्थित रंगीन वस्तु के प्रभाव से रंगीन प्रतीत हो , जीव रुपीरत्न अज्ञान मल के कारण मलीन प्रतीत होता है, बुद्धिमान[4] व्यक्ति को चाहिए कि यह इस मल का निराकरण करें, इसे बढ़ाए नहीं।

अन्य माध्यमिकों ने भी परमार्थ सत् की व्याख्या निष्प्रपंच और अनिर्वचनीय तत्व के रुप में ही है। निश्चयतः यह व्याख्या इसे (तत्व) और शंकर ब्रहा को एक दूसरे के अति निकट के जाता दृष्टिगत होता है। शंकर एवं महायान बौद्ध मतों की पृथक् विलक्षणताएँ।

निश्चयतः ये साम्यमाएँ इस विचार के लिए पर्याप्त आधार प्रदान करते हैं कि शंकर मत की अपनी कोई वास्तविक मौलिकता नहीं है तथा यह अपने पूर्ववर्ती बौद्ध से उधार ली हुई अर्थात् अधिगृहित है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन, इसी विचार के प्रबल उद्घोषक हैं। पाश्चात्य विचारक रिचर्ड डब्ल्यू बुक्स भी इसी विचार का सर्थन करते पाये जाते हैं। लेकिन रिचर्ड क्यों यह सत्य है ? निश्चय शंकर मत पर बौद्ध प्रभाव को इन्कार नहीं किया जा सकता लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि शंकर-मत बौद्ध मतों की पुनर्रावृति अथवा नामान्तर मात्र है। इसे स्पष्ट करने तथा दोनों मतों की मौखिक विलक्षणताओं के प्रदर्शन के क्रम में हमें इन दोनों में प्रभावी भिन्नताओं को देखना होगा। शंकर वेदान्त की माया और माध्यमिक की संवृति के बीच अन्तर।

वेदान्त की अविया अथवा माया तथा माध्यमिक की संवृति के संबंध में जो महत्वपूर्ण उल्लेखनीय तथ्य है, वह यह कि वेदान्त के अधिया सिद्धान्त अथवा मायावाद का उदय तार्किक चिन्तन में हुआ है , जबकि बौद्ध दर्शन के सभी सम्बद्ध निकार्यों , विशेषकर माध्यमिकों में संवृत्ति की अवधारणा का उदय उनके प्रासंगिक मय हआ है। यहाँ तार्किक चिन्तन का अर्थ यही है कि सत् अथवा व्रहा के सम्बन्ध में कुछ कहना संभव हो सके। इसी प्रकार प्रासंगिक नय में भी उस वस्तु के सम्बन्ध में कुछ कहना सम्भव हो सके। इसी प्रकार प्रासंगिक नय में भी उस वस्तु के सम्बन्ध में कुछ बात करना अभिप्रेत है जिसके सम्बन्ध में कुछ कहा जा सके। दूसरे शब्दों में वेदान्त में एक वास्तविक सचा अभिप्रेत है किन्तु इसका कथन कुछ विरोधाभासों के बिना नहीं किया जा सकता। माध्यमक नय में कथन की संभावना की स्वीकृति तो है किन्तु किसी तरह की अपनी स्वतंत्र स्थापना नहीं है।

किन्तु यहाँ यह कहना उचित होगा कि वहाँ बौद्ध दर्शन इस सम्बन्ध में एक वास्तविक कठिनाई में पड़ गया वहीं शंकर वेदान्त नहीं पड़ा। ऐसी प्रत्येक वस्तु का निषेध करना जो कि निवेदन का विषय बन सकें और इस निषेध के माध्यम से विश्लेषण का प्रारम्भ करना कुछ असंगत सा प्रतीत होता है। यह एक प्रकार का विरोधाभास सा है क्योंकि यह विश्लेषण के आधार की ही समाप्त करना-सा प्रतीत होता है। विशुद्ध प्रासंगिक नय, जिसमें किसी तरह की वस्तुमीमांसा है ही नहीं, का अर्थ तो यही लगता है कि हमारे अपने कथन प्रतिपक्षी के कथनों की दृष्टि से है किसी वस्तु स्थिति की दृष्टि से नहीं। जब सभी कथन एक दूसरे को ध्वस्त कर देते हैं तब इस नय द्वारा सारी तार्किंत संरचना या प्रपंच काट दिया जाता है तब शून्यता का साक्षात्कार होता है। इस निषेधात्मक तार्किक पद्धति की प्रक्रिया के अन्तर्गत क्या शून्यता को किसी तरह की वस्तुस्थिति कहा जा सकता है? चूँकि माध्यमिक के जितने भी कथन हैं वे किसी तथ्य को उद्धत नहीं करते , केवल एकदूसरे को काटते भर है, अतः ऊपर उल्लिखित प्रश्न अनुचरित रह जाता है। दूसरी तरफ , शंकर वेदान्त का प्रत्येक कथन ब्रहमा के स्वरूप के प्रकाश में स्वयं को रखकर देखता है। दूसरे शब्दों में इस वेदान्त का प्रत्येक कथ्न स्वयं अपने आप ध्वस्त हो जाता है , इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक कथन सत्य होने के नाते मिथ्यात्व में प्रतिपन्न होता है। साथ ही , चूँकि इन कथनों की सत्यता इनकी अक्रियात्मकता है , अतः इसी सत्यात्मकता के कारण ये मामायमय बन जाते हैं। माध्यमिक स्थिति में अन्तर्निहित सापेक्षता शून्यता की परमार्थता से विनिश्चित है जो कि माध्यमिक नय की दृष्टि से निषेधात्मक भी दिखती है।

संभवतः विवेचन को सार्थक बनाने की उद्देश्य से बौद्धों के विज्ञानवादी शाखा में माध्यमक नय की प्रक्रिया में कतिपय सीमाएँ लगा दी गयी है। शंकर वेदान्त के आदर्शवा में विवेचन का महत्व कोई समस्या नहीं है किन्तु माध्यमिक में यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि क्या शून्यता या शून्य इस प्रकार की सीमा प्रस्तुत करता है

*Corresponding Author: **डा॰ नाजनी बेगम**

एवं सार्थकता धारण करता है ? ऐसा प्रतीत होता है कि वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है यद्यपि कि यहाँ अर्थात् माध्यमिक मत में शून्य की परमार्थ सत् कहा गया है। यहाँ विभिन्न दृष्टिकोणों के पारस्परिक व्यकधयों द्वारा उच्छेद कर देने की प्रक्रिया का कोई वास्तविक वस्तुसतात्मिक परिसीमचक नहीं है। अतः स्वयं संवृति ऐसा तथ्य है जो इस कार्य को पूरा करता है। यही वह संदर्भ है जिसमें लोक संवृति और संवृति के बीच विभेद देखना होगा ताकि तार्किक अव्यवस्था की संभावना को सीमित किया जा सके। इसके विपरत शंकर-वेदान्त में किसी प्रकार के कथन के पूर्व ही ऐसी सीमा विद्यमान रहती है , वस्तुतः यहाँ यह प्रारंभिक बिन्दु भी है और अंतिम लक्ष्य भी। यहाँ यह परिसीमक स्वयं ब्रहा है , संवृति या माया नहीं, इसलिए यहाँ वस्तुतंत्र एवं त्रुटि प्रमाण का महत्व है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि अद्वैत वेदान्त में अधिवधा सिद्धानत अथवा मायावाद का विकास क्यकृत्यों को सीमित करने के साधन के रुप में नहीं हुआ है जैसा कि बौद्ध दर्शन में संवृतिवाद का हुआ।

शंकर-वेदान्त का व्रहा तथा माध्यमिक दर्शन के परमार्थ सत् के बीच अन्तर शंकर-वेदान्त का ब्रहा तथा माध्यमिक दर्शन के परमार्थ सत् के बीच अन्तर।

शंकर-वेदान्त में व्रहा को परतत्व अथवा पारमार्थिक सत्य माना गया है , जबकि माध्यमिक बौद्ध दर्शन में शून्यता एवं निःस्वभावता को परमार्थ सत्य माना गया है। तुलना की दृष्टि से प्रातीतिक समानता के बावजूद दोनों में भेद अधिक है। इस सन्दर्भ में विवेचन का आरम्भ हम प्रख्यात विद्वान डा॰ टी॰आर॰वी॰ मूर्ति के उस गंभीर विवेचन से करेंगे , जिसके अन्तर्गत इन्होंने इन दोनों के अन्तर को अद्वय एवं अद्वैत के मध्य विद्यमान प्रभेद के आधार पर स्पष्ट किया है। इनके अनुसार अद्वय (माध्यमिक दर्शन) वह ज्ञान है जो अस्तित्व और नास्तित्व भाव और भाव आदि के अन्त वाले द्वैत से विनिर्भुक्त है, जबकि अद्वैत (वेदान्त) एक द्वैत रहित सता का शान है। नेक विचार में अद्वय ज्ञान तत्वमीमांसात्मक पद्धति है और माध्यमिक अद्वयवाद का एकमात्र उद्देश्य प्रज्ञा की विशुद्धि है। सत्ता को एक या अनेक , नित्य या क्षणिक आदि के रुप में देखने की जो अपरिहार्य प्रवृति है उसे प्रदेषित बुद्धि प्रमग्रस्त हो जाती है , फलस्वरूप तत्व या परमार्थ या स्वरुप आवृत हो जाता है, जिसका उच्छेद करना ही माध्यमिक हृदयवाद का मुख्य उद्देश्य है। इस प्रकार यहाँ मानव के ज्ञान की यर्थाथता पर अधिक जोर है , शैय पदार्थ पर नहीं। दूरी तरफशंकर अद्वैत वेदान्त का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है। यह पूर्णतः तत्वमीमांसक है, फलस्वरूप यहाँ शैय वस्तु के विवेचन पर अधिक जोर है। जब श्रेय वस्तु सार्वभौम एवं वैतों से मुक्त हो तो उसका ज्ञान भी उसी स्वरूप का हो जाता है।

व्रहाविद् व्रहेव भवति

डॉ॰ मूर्ति ने आगे यह भी स्पष्ट किया है कि माध्यमिक अद्वेयवाद में चिन्तन की विभिनन प्रवृत्तियों का तत्वों के रुप में वर्गीकरण करने की दृष्टि है , फलस्वरुप माध्यमिक किसी भी प्रकार के तत्वमीमांसा से स्वयं को बचाता हुआ दृष्टिगत होता है। इसके विपरीत अद्वैत वेदान्त ने इन विभिन्न बिन्दुओं पर अपने मत को स्थापित करने का प्रयास किया है। डॉ॰ मूर्ति का यहाँ स्पष्ट मानना है कि अद्वैत वेदान्त के व्रह तथा माध्यमकों के परमार्थ के मध्य जो मौखिक दृष्टि का भेद है वह बहुत कुछ अद्वैत और अद्वय के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है।

दोनों मतों की भिन्नता एवं शंकर-मत की विलक्षणता के स्पष्टीकरण में यहाँ हम इन दोनों दर्शनों की मुख्य स्थापनाओं की तुलनात्मक समीक्षा निम्नवतः प्रस्तुत करेंगे-

जीवन और अविद्या:

शंकर-वेदानत के अनुसार अहंकी भावना का जीवन की कल्पना गलत है। दर्पण में मुख या चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है किन्तु वहाँ मूल या चन्द्रमा नहीं होते हैं। उसी प्रकार चिन्मात्र निर्विशेष व्रहा में अर्ह या ज्ञाता की कल्पना भ्रममात्र है। व्रहा में अर्ह की कल्पना ही अविद्या है। अविद्या के कारण ही व्रहा में ज्ञाता या जीवन की भावना पैदा होती है।

प्रासंगिक माध्यमिकवाद के अनुसार अहं की भावना नितांत गलत नहीं है , उसी प्रकार जैसे घट-घटादि की भावना गलत नहीं है। जैसे घट-घटादि की व्यवहारिक सत्ता है , वैसे ही अहं या जीवन की भी व्यवहारिकता सच है। अहं के प्रति सस्वभावक्ता की कल्पना और घटादि के प्रति स्वभाव सता की दृष्टि अवश्य गलत क्योंकि जीव तथा घटादि अवश्य निस्सवभाव होते है।

अह्न तथा घटादि की आलम्बन मानकर सस्वावता की कल्पना ही अविद्या है। जैसे दर्पण में मुख मंडल नहीं होता, उसी प्रकार घटादि का स्वभावास्तित्व नहीं होता है। इसी निःस्वभावता को शून्यता कहते हैं। यह शून्यता भी निःस्वभाव असत् है। ऐसा कदापि नही है कि घटादि वस्तु निःस्वभाव हो शून्यता स्वभावतः सत् हो, जैसे व्रहा स्वभावतः तथा अन्य सभी असत् है। इसीलिए यह कहना गलत है कि शंकर के व्रहा और माध्यमिकों की शून्यता में अधिकर अन्तर नहीं है।

जीव की कल्पना अथवा अहंमात्र का बोध और घटादि वस्तुओं के बोध को कोई भी वौद्ध अदिध्या नहीं मानते हैं, क्योंकि अविद्या क ग्राह्य सर्वथा नैरात्मय का प्रतिषेध्य होता है। अर्ह याजीवन तथा घटादि का कोई भी नैरात्म्य का प्रतिषेध्य नहीं है। किसी भी धर्म की स्वभाव सदा ही शून्यता दर्शन का प्रतिषेध्य होती है। अतः व्रहा की स्वभावसता जो शंकर-वेदान्त-दर्शन का मूल बिन्दु है , वह शून्यता दर्शन के प्रतिषेध्य आत्म के साथ समानता रखती है।

जगत् का मिथ्यात्व:

शंकर-वेदान्त के अनुसार दृश्य जगत् मिथ्या है। परमार्थतः इसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। जगत् की कल्पना केवल प्रान्ति का अधिष्ठान व्रहा है। व्रहा की स्वभावसता होती है , जिससे सव प्रान्तियाँ उत्पन्न होती है या जिस पर सब प्रान्तियाँ आश्रित है।

प्रासंगिक माध्यमिक दर्शन भी घटादि को मिथ्या मानते है। लेकिन इनके द्वारा मिथ्या मानने में अन्तर है। इनके अनुसार घटादि अर्थात् जगत् मिथ्या इसलिए है कि वे यद्यपि स्वाभावसतावान् दिखलाई पड़ते हैं, पर वस्तुतः निःस्वभाव होते हैं। निःस्वभाव होने तथा असत् होने में अन्तर है।

यहाँ विवेचन के क्रम में दोनों के दर्शन में प्रयुक्त प्रान्ति का अर्थ भी विचारणीय है। शंकर-वेदान्त में प्रान्ति का अर्थ एकदम गलत ज्ञान से है। बौद्धों में भ्रानत ज्ञान तथा विपर्यास ज्ञान में अन्तर है। घटपादि की कल्पना प्रान्त है , क्योंकि उनमें स्वभावसता का प्रतिमास होता है , किन्तु राज्जुसर्प बुद्धिवत् विपरीत अर्थात् विपर्यास बुद्धि नहीं है , क्योंकि घटादि बुद्धि का व्यवहृत विषय उपलब्ध होता है , जबकि रज्जु सर्प वुद्धि का व्यवहृत विषय उपलब्ध नहीं होता। यहाँ दूसरी बात महत्वपूर्ण है कि घटादि बुद्धिलोक प्रचलित व्यवहारिक बुद्धि से बाधित नहीं है , जबकि रज्जु सर्प वुद्धि व्यवहारिक बाधित है। व्यवहारिक सता लोक व्यवहार द्वारा ही स्थापित हुआ करती है। इस लोक प्रसिद्ध व्यवहारिक सता को ही प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं। मिथ्या कहने पर भी मिथ्या होने की सीमा तथा परिभाषा में बहुत अन्तर हैं अतः माध्यमिकवाद को शंकर वेदान्त दर्शन के साथ मिलाना और शून्यतावाद की शब्दावली मे ब्रह्म को लपेट कर तर्कसंगत बनाने की कोशिशें करना व्यर्थ है।

सत्व:

शंकर वेदान्त का मानना है कि अखण्ड होने पर भी ब्रह्म अनन्त या शून्य नहीं है अनन्त तथा शून्य नहीं हो अनन्त थि शून्य नहीं हो तभी वह सत् हो सकता है। "सत्" त्रिकालाबाधित होतात है और सत्ता ही उसका स्वरूप है। ब्रह्मा यदि अनन्त या शून्य हो तो जत् की सृष्टि निराधार होगी। इसका अर्थ यह है कि ब्रह्म ही एकमात्र "सत्" तथा सत् का अर्थ भी स्वभावतः सत् है। इसी से सृष्टि होती है।

प्रासंगिक माध्यमिक बौद्ध के अनुसार शून्यता या निस्सवभावता सत् पदार्थ अर्थात् स्वभाव सचावान् सत् कदापि नहीं हो सकती। शून्यता निःस्वभाव होती है। जिस युक्ति से घटादि निःस्वभाव सिद्ध होते हैं , उसी युक्ति से निःस्वाभावता भी निःस्वभाव सिद्ध होती है। पंचदशी में विचारख्य स्वामी ने कहा है कि जब घट-घटादि संस्कृत धर्म निःस्वभाव है , तो असंस्कृत धर्मों की स्वभाव सत्ता कैसे हो सकती है। शून्यता असंस्कृत

धर्म है , अतः निःस्वभाव है। घट को निःस्वभाव मानकर उसकी निःस्वभावता को स्वभावत/सत् मानना युक्तियुक्त नहीं है। नागार्जुन ने इसका गंभीरता से प्रतिपादन किया है।

चित्व:

शंकर-वेदान्त के अनुसार ब्रहम अखण्ड और सत् होने पर भी वह अन्धकार से समान जड़ स्वरुप नहीं है। वह चैतन्य स्वरुप या ज्ञाप्ति स्वरूप है। चैतन्य उसका गुण नहीं बल्कि स्वरुप है। ज्ञान नित्य होता है तथा त्रिकालाबाधित होता है।

प्रासंगिक माध्यमिक बौद्ध के अनुसार निःस्वभावता या शून्यता चैतन्य स्वरुप कदापित संभव नहीं है। चैतन्य होने का अर्थ जड़स्वरूप का होना नहीं है। वह एक असंस्कृत धर्म है , अनित्य धर्म है तथा प्रसण्य प्रतिषेधस्वरूप है। चैतन्य आदि यदि हो तो वह नित्य नहीं हो सकता तथा नित्य होने से वह ज्ञान नहीं हो सकता। कोई भी बौद्ध दर्शन नित्य ज्ञान नीं मिलता। विद्व चैतसिक तथा चैतन्य सर्वदा क्षणिक तथा विनाशील होते हैं। चैत्न्य का क्षणिकत्व सभी बौद्ध मानते है।

महायान में धर्मकाय को स्वीकार किया गया है। धर्मकाय दो प्रकार का होता है-स्वभाव धर्मकाय और ज्ञानधर्म काय। बुद्ध का सर्वज्ञ ज्ञान ज्ञानधर्मकाय है तथा उसकी निःस्वभानवता स्वभावधर्मकाय। लेकिन सर्वज्ञा ज्ञान नित्य नहीं है। बल्कि क्षणि तथा संस्कृत है। स्वमानवधर्मकाय नित्य है , परन्तु वह चैतन्य नहीं है। इसलिए धर्मकाय और व्रहा में कोई भी समानता नहीं है। इन दोनों को मिलाना अनुचित है।

आनन्दमयत्व:

शंकर वेदान्त के अनुसार व्रहा केवल अखण्ड, सत् और चित् ही नहीं है, अपितु आनन्द स्वरूप है।

प्रासंगिक माध्यमिक दर्शन के अनुसार शून्यता कोई आनन्द स्वरूप नहीं है। उसमें दुःखों का अभाव रहता है। घट-पदादि की निःस्वभावता आनन्दस्वरूप नहीं है-यह एक संदेहाती सत्य है। धर्मकार्य के सम्बन्ध में निःसन्देह विचार संभव है। लेकिन हमें ध्यान रखना होगा कि केवल ज्ञानधर्मकाय ही आनन्दस्वरूप है। स्वभावधर्मकार्य नहीं। उसे महासुख या महानन्द की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि उसमें सर्वाधिक दुःखों का अभाव है। वसुवन्धु ने भी कहा है-

स एकानास्त्रवो धातुरचिन्त्यः कुशलो ध्रुवः।
सुखो विभुक्तिकायो सी धर्मास्यो यं महामुने।।

अवा मनोगापरत्व:

शंकर वेदान्त में व्रहा को वाक् तथा मानत् से अनोचार गया है। व्रहमा वाणी तथा मनस् का विशेष बन सकता, क्योंकि वह अर्थात ब्रहा इन सबका साक्षी है , उसी के प्रकाश से वे तब प्रकाशित होते है। ब्रहम , बृद्धि, मन, प्रमाण और इन्द्रिय व वाल ते अगन्य है।

अभी इन स्थापना में शंकर-वेदान्त वोद्धो की शब्दावली से प्रभावित दृष्टिगत होता है। निश्चतः वाक् तथा मानसू की अगोरता की भावना यद्यपि बौद्धों की प्रणाली प्रतीत होती है, लेकिन हमें ध्यान रखना होगा कि यहाँ इसका अर्थ विपरीत हो गया है। इसे हम निम्नतः स्पष्ट करने का प्रया करेगें।

महायान सूत्रों तथा अन्य प्रस्तुत शास्त्रों में शून्यता को वाक् एवं कल्पनाओं से अगोचर बतलाया गया है। वह भी स्पष्ट बताया गया है कि अगोचर का अभिप्राय क्या है। मूल माध्यमिक कारिका में कहा गया है -

अपर प्रत्यर्य शान्तें प्रपवेर प्रवतीयतम्।
निर्विकरूपमनाना धमतेपत्वत्य लक्ष्मण्।।
वाधिचर्याता में कहा गया है। -
बुद्धेरगोचत्तत्वं बुद्धि संवृतियच्यतें

इस प्रकार शून्यता का अचिन्तनीय , अनिर्वपीनय, कल्पनातीत इत्यादि रूप में वहाँ प्रतिपादन हुआ है। प्रश्न उठता है इससे क्या अभिप्रत है ? स्पष्टीकरण में कहा जा सकता है कि प्रासंगिक माध्यमिक मद के अनुसार निःस्वामानवता या शून्यता समान्य जनों के द्वारा साधन है , जिनके द्वारा वे शून्यता को जानते है। कल्पनावृद्धि शून्यता की जानती है किन्तु वह यथावत् नही जानती क्योंकि उसमें स्वभावता का प्रतिमास होता है। यथावत् ज्ञात तो तभी होता है कि जब शुन्यता का साक्षात्कार होता है। अतः शून्यता की कल्पना बुद्धि से अतीत बतलाया गया है। साक्षात्कार केवल अर्थव्यवस्था में ही होता है। जैसा साक्षात्कार होता है , वैसा शब्दों के द्वारा भी प्रकट नहीं किया जा सकता। अतः शून्यता को वाक् का अंगो पर बतलाया गया है।

अतः कह सकते है कि शून्यता का किसी भी ज्ञान तथा शब्द का विषय नही होना-उसका अर्थ नहीं है। आर्या का ज्ञान तथा सर्वज्ञ ज्ञान शून्यता को जानता है और यथावत् जानता है। कोई बौद्ध दर्शन विषयविहीन ज्ञान नही मानता। साधारणजन सुक्तियों द्वारा सर्वप्रथम निःस्वाभावता को अनुमान प्रमाण द्वारा जानते है। वह अनुमान प्रमाण कल्पना बुद्धि स्वल्प होता है। उस ज्ञान को शपथ के माध्यम से विकसित किया जाता है। उसका जितना विकास होता है , उतनी उसकी प्रबलता बढ़ती जाती है। जब प्रबल्ता पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है तो वह ज्ञान पूर्णत प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है , जो निः स्वभावत को प्रत्यक्षता जानता है। तब सम्बद्ध व्यक्ति कार्य बन जाता है। उस समय वह संवृति सतय और परमार्थ सत्य दोनों को एक साथ प्रत्यक्ष रूपेण नही जानता। उसे आगे विकास के अनेक स्तरों से गुजरना पड़ता है। ज्ञान के विकास के लिए केवल समाधि ही पर्याप्त नही है बल्कि दानादि पुण्य तैयारी की भी अनिवार्यता होती है। जब सम्पूर्ण ज्ञेवावरण का निवारण कर ज्ञान तर्वातम स्तर तक पहुँचता है तो वह ज्ञान सतर्क ज्ञान या महावोधि के नाम से जाना जाता है। धारा वहीं है, जो साधारण जनों से होकर चली थी।

अतः यह संभ्वा ही नहीं है कि वृद्धावस्था में ज्ञान या शेय ही नहीं हो तथा शून्यता की कोई जानता ही नहीं हो , शून्यता साधारण जन-अवसा से ही जानी जाती है , लेकिन ज्ञान के स्वरूप तथा जानने के तरीके में अन्तर है। साधारण जन अवस्था में अनुमान प्रमाण द्वारा शून्यता का ज्ञान होता है। जबकि आर्यावस्था में प्रत्यक्षतया शून्यता को जानते हैं। दूसरे शब्दों में ऐसा कह सकते हैं कि वृद्धावस्था में संवृति मत्कृ और परमार्थ सत् दोनों का युगपद् ज्ञान होता है।

सारांश:

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सारांशतः कह सकते हैं कि परमार्थ सत् के सम्बन्ध में दोनों मतों की अपनी मौलिक विलक्षणताएँ है। शंकर वेदान्त में पारमार्थिक सत् वहाँ अखण्ड , सच्चिदानन्द, अवाह् मनोगोचर, अखिल धारक और आत्मस्वरूप माना गया है , जबकि माध्यमिकवाद की शून्यता का निःस्वाभावता निरवरयव नहीं है, स्वमानवतः सत् नहीं है, चैतन्य नहीं है, आनन्द स्वरूप नहीं है, वाक एवं मानस की अगोगचर नहीं है। वह सृष्टि का कारण तथा नाश का कारण नहीं है। वह आत्म स्वरूप न होकर नेरात्व स्वरूप है। अतः शून्यता को शंकर वेदान्त के व्रहा के साथ मिलाना सर्वथा अनुचित है।

संदर्भ सूची

1. माध्यमिक कारिता, 18, 1, नार्गाजून।
2. चतुः शतक् कारिका, 288, आर्यदेव।
3. चितविशुद्धि प्रकरण, 28 आर्यदेव।
4. चितविशुद्धि प्रकरण,29 ।
5. दि प्राब्लम ऑफ ट्रूथस इन बुद्धिज्म एण्ड वेदान्त, रिचर्ड डब्ल्यू।
6. टूटूपस इन बुद्धिज्जम एण्ड वेदान्त, मूर्ति,टी॰आर॰वी॰ ।
7. पंचदशी, 3135, विद्याख्यास्वामी, बुद्धि सेवाश्रम, विजनोर, सं॰-2011

*Corresponding Author: **डा॰ नाजनी बेगम**

8. मूल, माध्यमिक कारिका, 13/81
9. त्रिशिंका विज्ञाप्ति मात्रतासिद्धिः 30, वसुवन्धु ।
10. मूल माध्यमिक कारिका, 18/9, नागार्जून ।